चमको, ग्लोवर्म चमको

स्टीफन जे गूल्ड

छोटी-मोटी गलतफहमियाँ अक्सर किसी सूझबूझ या फतह की सबब बन जाती हैं। *मार्च ऑफ दी वुडन सोल्जर्स* में इसी तरह की बड़े परिणाम वाली एक तुच्छ-सी गलती के लिए लॉरेल और हार्डी काफी गम्भीर मुश्किल में फँस गए थे - उन्होंने 6-6 फुट के 100 सिपाही बना दिए थे जबकि सान्टा ने 1-1 फुट के 600 सिपाही बनाने का आदेश दिया था। इस छोटी-सी गलती के लिए उन्हें बरखास्त कर दिया गया था। अलबत्ता, आगे चलकर इन्हीं छःफुटे सिपाहियों ने टॉयलैण्ड को बार्नेबी और उसके शैतानों के हमले से बचाया था।

जिन कीटों में पूर्ण कायान्तरण होता है, उनमें जो कोशिकाएँ वयस्क ऊतक बनाने वाली होती हैं, वे इल्ली के शरीर में छोटे-छोटे अलग-अलग चकत्तों के रूप में पहले से मौजूद होती हैं। इन चकत्तों को इमेजिनल डिस्क कहते हैं। कई वर्षों तक मैं सोचता था कि यह जुम्ला जीव विज्ञान के सबसे पुराने जुम्लों में से एक है - क्योंकि मैं हमेशा 'इमेजिनल' को 'इमेजनरी' पढ़ता था और सोचता था कि यह कहा जा रहा है कि प्रौढ़ावस्था की जिस सामग्री की बात

की जा रही है, वास्तव में उसका कोई अस्तित्व ही नहीं है।

जब मुझे इस जुम्ले की सही उत्पत्ति पता चली तो समझ में आया कि मैंने न सिर्फ इसे गलत समझा था, बल्कि पूरी तरह उल्टी व्याख्या कर डाली थी। मैंने यह भी देखा कि मेरी व्याख्या ने मुझे एक दिलचस्प बात सिखाई थी - दुनिया के तथ्यों के बारे में नहीं, उसको देखने के तरीके के बारे में। इसलिए मैंने अपनी इस त्रुटि को फलदायी माना।

वर्गीकरण या टैक्सोनॉमी के जनक लीनियस ने स्वयं कीटों के विकास की अवस्थाओं का नामकरण किया था। उन्होंने अण्डे से निकलने वाली खाऊ अवस्था को लार्वा यानी इल्ली कहा था (तितली और पतंगों में कैटरपिलर और मक्खियों में मैगट्स)। और उन्होंने लैंगिक रूप से परिपक्व अवस्था को इमेगो कहा था। लिहाज़ा, इमेजिनल डिस्क का मतलब है लार्वा के अन्दर वयस्क (इमेगो) ऊतकों के पूर्वगामी।

इन जुम्लों की उत्पत्ति मेरी सूझबूझ बन गई - लार्वा एक नकाब है; इमेगो किसी प्रजाति की छवि या मूल रूप है। दूसरे शब्दों में लीनियस ने कीटों के विकास को एक सम्पूर्णता की दिशा में प्रगति के रूप में देखा था। प्रथम अवस्था मात्र तैयारी है; यह प्रजाति के वास्तविक और सम्पूर्ण प्रस्तुतीकरण को छिपाती है। अन्तिम स्वरूप में मूल गुण - मक्खी-पन, जूँ-पन या तितली-पन - साकार होता है। चाहे शब्द-उत्पत्ति की दृष्टि से देखें या अवधारणा की दृष्टि से, इमेजिनल डिस्क दरअसल एक उच्चतर यथार्थ के पुंज हैं जो एक शुरुआती अपूर्णता में छिपे बैठे हैं - यहाँ किसी 'आडम्बर' का कोई चिन्ह नहीं है।

वैज्ञानिक समझ में अधिकांश बाधाएँ अवधारणात्मक गुत्थियाँ होती हैं, तथ्यों का अभाव नहीं। सबसे मुश्किल होता है उन पूर्वाग्रहों को उखाड़ना जो हमारी जाँच-परख से बच निकलते हैं क्योंकि वे इतने स्पष्ट तौर पर सही लगते हैं, लगभग अपरिहार्य हद तक सही लगते हैं। हम स्वयं को सबसे बढ़िया ढंग से जानते-समझते हैं और बाकी सारे जीवों को हमारी अपनी संरचना और सामाजिक व्यवस्था के प्रतिबिम्ब मान बैठते हैं (मसलन, अरस्तू और उनके बाद अगले दो हज़ार सालों तक उनके अनुयायी मधुमक्खियों के झुण्ड का नेतृत्व करने वाली बड़ी मक्खी को राजा कहते रहे)।

मानव अस्तित्व के कुछ ही पहलू हैं जो वृद्धि और विकास से अधिक बुनियादी हैं। बचपन के सारे महिमा-मण्डन के बावजूद पश्चिम में हम लोग अपने बच्चों को वयस्कों का अविकसित व अपूर्ण रूप ही मानते हैं - अपेक्षाकृत छोटे, कमज़ोर और अज्ञानी। प्रौढ़ावस्था अन्तिम पड़ाव है; बचपन एक रास्ता है, जो ऊपर की ओर जाता है। तब यह कितना स्वाभाविक लगता है कि हम अन्य

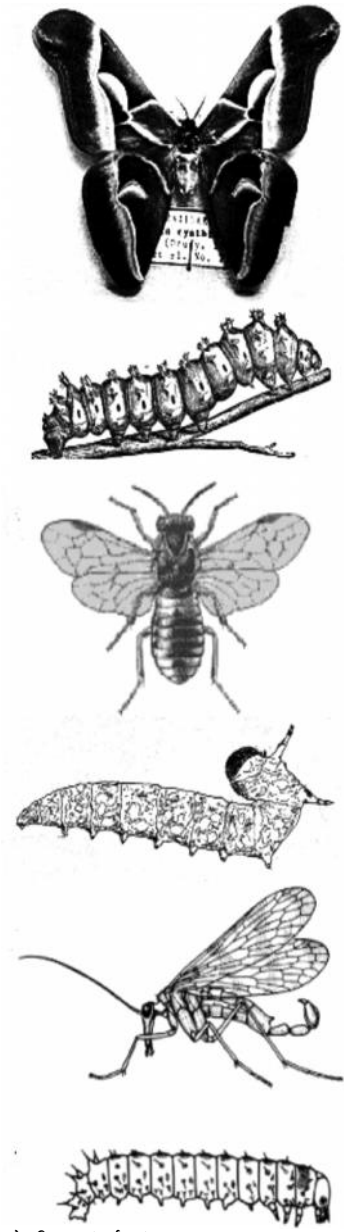

जीवों के जीवन चक्रों को भी एक सीधा रास्ता मानें - अधूरी सम्भावनाओं से शुरू करके सम्भावनाओं के साकार होने तक। अण्डे से निकलने वाले एक छोटे-से अनगढ़ जीव से शुरू करके एक जटिल मंज़िल तक जो अगली पीढ़ी का अण्डा उत्पन्न करती है।

खास तौर से, यह सोचना कितना स्वाभाविक है कि कीट-लार्वा एक अपूर्ण बाल्यावस्था है और इमेगो साकार वयस्क है। लीनियस द्वारा इस शब्द का उपयोग उस पारम्परिक व्याख्या की बानगी है जिसमें मनुष्य जीवन को कीटों के विकास पर थोपा गया है। जब हम मनुष्य और कीटों के जीवन चक्रों की इस संदिग्ध तुलना को विकास-शृंखला की अपनी सामान्य समझ, जिसमें विकास को क्रमिक सीढ़ियों का एक सिलसिला माना जाता है, के साथ मिलाते हैं, तो कीट का लार्वा तमाम किस्म के पूर्वाग्रहों - शाब्दिक, अवधारणात्मक और पेरोकियल पूर्वाग्रहों के मिले-जुले दबाव से ध्वस्त हो जाता है। विकास की इस समझ ने भ्रूण-विकास को समझने में जितनी बाधाएँ पैदा कीं, उससे ज़्यादा बाधाएँ इसने जैव-विकास को समझने में पैदा की हैं।

यदि हम डारविन की *ओरिजिन ऑफ स्पीशीज़* के बाद प्रकाशित विज्ञान की दो अग्रणी रचनाओं को देखें, तो हमें इन पारम्परिक पूर्वाग्रहों का एक अच्छा एहसास मिलता है। इनमें से पहली थी जीवन चक्रों पर एक सामान्य

पुस्तक और दूसरी थी कीटों पर। ए.द. काट्रफाज़ कीट-लार्वाओं के आर्थिक सम्राट यानी रेशम की इल्ली के विशेषज्ञ थे। उन्होंने अपनी पुस्तक '*मेटामॉर्फोसिस ऑफ मैन एण्ड दी लोअर एनिमल्स*' (1864) में लिखा था, 'लार्वा...सदा अपूर्ण जीव होते हैं; वे सही मायनों में प्रथम प्रारूप हैं, जिन्हें विकास की हर अवस्था में ज़्यादा-से-ज़्यादा पर्फेक्ट बनाया जाता है।'

बारहैम के रेक्टर विलियम कर्बी और विलियम स्पेंस की '*एन इंट्रोडक्शन टू एंटोमोलॉजी*' पॉपुलर विज्ञान के क्षेत्र में ख्याति, दीर्घायु (इसका प्रथम संस्करण 1815 में छपा था) और गद्य की दृष्टि से प्रथम स्थान पर है। यह गद्य 'प्रकृति लेखन' की आलीशान अलंकारिक परम्परा में लिखा गया है।

इस पुस्तक के डारविन-उपरान्त प्रथम संस्करण (1863) में कर्बी और स्पेंस ने सुगठित इमेगो के प्रति अपने प्रेम और ग्रबी लार्वा के प्रति अपनी घृणा को छिपाने का प्रयास कदापि नहीं किया था (वैसे ग्रबी लार्वा में दोनों शब्दों का अर्थ एक ही है - ग्रब मतलब लार्वा, और ग्रब के इस विशेषण जिसका मतलब है 'तुच्छ' या 'मैला', का उपयोग भी उसी पूर्वाग्रह का नतीजा है):

"वह सक्रिय नन्हा (मूल लेख में मक्खी को नर ही कहा गया है) मक्खी, आपकी मेज़ पर अनाहूत मेहमान, जिसका नाज़ुक तालू, वाइन की बूँद के किनारे की ओर अपनी सूँड़ को बढ़ाते हुए, आपके सबसे पसन्दीदा व्यंजन को चुनता है, और फिर सेब या नाशपाती जैसी किसी चीज़ से थोड़ा ठोस निवाला लेने को खुशी-खुशी उड़ जाता है; एक पल अपने साथियों के साथ हवा में उड़ता, दूसरे पल अपने सिमटे हुए पंखों को अपनी पतली-पतली टाँगों से बुहारता (यह जीव) कुछ ही दिन पहले एक घृणास्पद ग्रब ही तो था जिसके न पंख थे, न टाँगें, न आँखें और जो खुशी-खुशी विष्ठा के ढेर में लोटता था।"

मक्खी: वयस्क और ग्रब

वे लिखते हैं कि वयस्क को इमेगो कहते हैं *"क्योंकि अपनी नकाब (लार्वा) हटा देने के बाद और अपने शिशुवस्त्र (प्यूपा का कोया) उतार फेंकने के बाद यह न तो छद्मवेशी (लार्वा) है, न कैदखाने (प्यूपा) में बन्द है, न ही किसी अन्य मायने में दोषपूर्ण, यह अब अपनी प्रजाति की छवि का सच्चा प्रतिनिधि बन चुका है।"*

जब कर्बी और स्पेंस अपेक्षाकृत व्यापक ईसाईयत के ज़माने से सबसे प्राचीन कीट उपमा खोजकर लाते हैं तो लार्वा के लिए रूपकों का बोझ उत्तरोत्तर भारी होता जाता है - यह रूपक है जिसमें तितली के जीवन चक्र की तुलना आत्मा के आवागमन से की गई है - आत्मा का प्रथम जीवन मानव शरीर के दोषपूर्ण कारागार (लार्वा) में माना गया है, इसके बाद मृत्यु और प्रायश्चित (प्यूपा) के बाद पुनर्जीवन की पंखदार आज़ादी है (इमेगो, तितली)। यह रूपक महान डच जीव वैज्ञानिक यान स्वामरडैम के ज़माने का है। स्वामरडैम देकार्ते के तर्कवाद (कारटीज़ियन रॅश्नलिज़म) की पैदाइश थे मगर साथ ही, दिल से, एक धार्मिक रहस्यवादी थे। उन्होंने तितली के पंखों की प्रारम्भिक अवस्था (कलिका) की खोज की थी जब ये पंख लार्वा के अन्तिम चरण में लिपटे हुए रहते हैं। स्वामरडैम ने सत्रहवीं सदी के अन्त के करीब लिखा थाः "तितलियों में यह प्रवर्ध (उभार) इतने प्रेक्षणीय ढंग से बनता है कि इसमें हमें अपनी आँखों के सामने पुनर्जीवन का चित्र नज़र आता है और ऐसे साकार होता है कि इसे हम अपने हाथों से जाँच सकते हैं।" कर्बी और स्पेंस ने इसे थोड़ा और विस्तार दियाः

"ज़मीन पर रेंगते एक कैटरपिलर को देखिए जो अत्यन्त साधारण किस्म के भोजन पर जीवित रहता है...और जब इसका निर्धारित कार्य पूरा हो जाता है, तो यह मृत्यु-सदृश मध्यवर्ती स्थिति में पहुँच जाता है, एक किस्म के कफन में लिपट जाता है और ताबूत में बन्द हो जाता है, और आम तौर पर ज़मीन के अन्दर दफन रहता है...और फिर सूर्य की किरणों की ऊष्मा के आव्हान पर ये अपनी कब्र को तोड़कर बाहर निकलते हैं, अपनी पोशाक को उतार देते हैं...अपनी कोठरी में से किसी दुल्हन की तरह बाहर निकलते हैं - अपनी वैवाहिक गरिमा में लिपटे, जीवन की नवीन व ज़्यादा उत्कृष्ट स्थिति का लुत्फ उठाने को तैयार, जहाँ उनकी समस्त शक्तियाँ विकसित हो चुकी हैं, और वे अपने स्वभाव की सम्पूर्णता तक पहुँच चुके हैं; जो इस रोचक दृश्य का साक्षी है, वह देख सकता है कि यह मनुष्य के तिहरे अस्तित्व का जीवन्त चित्रण है।...तितली, जो आत्मा की द्योतक है, को अपनी भावी शानो-शौकत के लिए लार्वा के अन्दर तैयार किया जाता है;...यह प्यूपा के रूप में विश्रान्ति की अवस्था में रहती है, जो इसका भूमिगत निवास है; और समय के साथ यह

इमेगो का रूप धारण करती है, नई शक्तियों और शान तथा प्रेम की प्रबलता के साथ फूट निकलती है।"

मगर क्या यह ज़रूरी है कि हम परम्परा का पालन करें और लार्वा को किसी बेहतर स्थिति का अग्रदूत मानें? क्या समस्त जीवन चक्रों को इस रूप में देखा जाना चाहिए कि वे प्रगति के मार्ग हैं जिनकी मंज़िल प्रौढ़ावस्था है? मानव वयस्क दुनिया के संचार माध्यमों को नियंत्रित करते हैं - और नियंत्रण की इस शक्ति को अपने जीवन चक्र की एक अवस्था तक सीमित रखने की वजह से दृष्टि में एक संकीर्णता पैदा हुई है। मैं इस पूर्वाग्रह को मानव बचपन की सृजनशीलता और विशिष्टता के आधार पर चुनौती देता हूँ (जैसा कि कई अन्य लोगों ने किया है) मगर यह लेख कीटों के बारे में है।

मैं मानता हूँ कि कुछ हद तक हमारे सामान्य पूर्वाग्रह हमारे जैसे जीवों पर लागू होते हैं। हमारे शरीर एक निरन्तरता के साथ बढ़ते और बदलते हैं। मानव वयस्क अपने ही बाल-रूप का आवर्धित संस्करण है; हम वयस्कों में वही अंग होते हैं, आकृति में थोड़े बदले हुए और साइज़ में काफी बढ़े हुए (सरल जीवन चक्र यानी तथाकथित अपूर्ण कायान्तरण वाले कई कीट भी निरन्तरता के साथ बढ़ते हैं। इस लेख में उन कीटों की बात की गई है जो पूर्ण कायान्तरण की क्लासिक अवस्थाओं के चक्र से गुज़रते हैं: अण्डा, लार्वा, प्यूपा और इमेगो)।

मगर हम इस ऊपर चढ़ते मार्ग के पूर्वाग्रह को अन्य जीवों के पेचीदा जीवन चक्रों पर कैसे लागू कर सकते हैं? किस मायने में हम कहेंगे कि किसी नाय्डेरियन (cnidarian, कोरल और उनके सम्बन्धियों का फायलम) का पॉलिप उसके मेड्यूसा - जो पॉलिप पर एक कलिका के रूप में उगता है - के मुकाबले ज़्यादा (या कम) पूर्ण है? एक अवस्था भोजन करके वृद्धि करती है, जबकि दूसरी अवस्था सम्भोग करके अण्डे देती है। ये दो अवस्थाएँ अलग-अलग मगर बराबर महत्व के कार्य करती हैं। और क्या कहेंगे? कीटों के लार्वा और इमेगो में इसी तरह का विभाजन है - लार्वा खाते हैं, इमेगो प्रजनन करते हैं। इसके अलावा, लार्वा सिर्फ अंगों की वृद्धि और जटिलता में परिवर्तन के ज़रिए इमेगो नहीं बनता। होता यह है कि प्यूपा अवस्था के दौरान लार्वा के अंगों को खुरच-खुरचकर खत्म कर दिया जाता है और इमेगो का निर्माण कमोबेश कोशिकाओं के छोटे-छोटे समूहों - इमेजिनल डिस्क - से होता है। ये डिस्क लार्वा में उपस्थित थीं मगर विभेदित नहीं हुई थीं। प्यूपा के अन्दर लार्वा के विघटित होते ऊतकों का उपयोग अक्सर इमेगो के विकास के लिए पोषक माध्यम के रूप में किया जाता है। लार्वा और इमेगो भिन्न व स्पष्ट रूप से पृथक हैं - ऐसा नहीं है कि एक पहले आता है

और धुँधला-सा है जबकि दूसरा बाद में आता है और पूर्ण है।

कर्बी और स्पेंस ने भी भक्षण और प्रजनन के लिए अनुकूलित इन दो अवस्थाओं के बीच के इस वास्तविक अन्तर को पहचान लिया था। मगर उन्होंने इस समझदारी को प्रगति और पुनर्जीवन के रूपकों में दफन कर दिया:

"यदि आप...कैटरपिलर के आन्तरिक विन्यास की तुलना तितली से करें, तो आपको कहीं अधिक असाधारण बदलाव देखने को मिलेंगे। जहाँ कैटरपिलर में आपको चन्द हज़ार माँसपेशियाँ मिलेंगी, वहीं तितलियों में इन माँसपेशियों की जगह अन्य माँसपेशियाँ ले लेती हैं जो आकृति और संरचना में सर्वथा भिन्न होती हैं। कैटरपिलर का लगभग पूरा शरीर एक बड़े-से आमाशय ने घेरा होता है। तितली में यह लगभग अगोचर धागेनुमा अंग होता है; और अब उदर अण्डों के दो बड़े-बड़े पैकेट्स से भरा होता है।"

यदि हम अपने आम पूर्वाग्रहों के आतंक से मुक्त होकर लार्वा और इमेगो को दो अलग-अलग तथा भक्षण तथा प्रजनन की लगभग बराबर सम्भावनाओं वाले उपकरण मानें, तो कई गुत्थियाँ फौरन सुलझ जाती हैं। प्रत्येक अवस्था अपनी तरह से अनुकूलित होती है और इकोलॉजी व पर्यावरण की परिस्थितियों के अनुसार किसी को महत्व मिलता है जबकि अपनी आँखों की सीमित क्षमता के चलते हम मान लेते हैं कि दूसरी पदावनत (degraded) होकर गैर-महत्वपूर्ण हो गई है। यह 'पदावनत' अवस्था इमेगो भी हो सकती है और लार्वा भी। ज़्यादा सम्भावना इमेगो के पदावनत होने की है क्योंकि भोजन प्राप्ति को तो आप एक हद से ज़्यादा तेज़ नहीं कर सकते जबकि, जैसा कि कवियों ने कहा है, सम्भोग तो सम्मोहन की मात्र एक शाम होती है। मैं मे-फ्लाई (मक्खी जैसी एक द्विपंखी कीट प्रजाति) और उसके एक दिन के दन्तकथानुमा वजूद पर खेद किया करता था, मगर इस तरह की संक्षिप्तता तो सिर्फ इमेगो को सालती है, और अपेक्षाकृत दीर्घायु लार्वा भी तो जीवन चक्र में गिना जाएगा। और 'सत्रह साल' के सिकाडा* के बारे में क्या कहेंगे? इस लम्बे दौर में लार्वा चुपचाप पड़े रहकर सिर्फ इन्तज़ार नहीं करते उन चन्द दिनों के जगमगाते अस्तित्व का। वे एक सक्रिय भूमिगत जीवन बिताते हैं; हाँ, बीच-बीच में सुप्तावस्था के अन्तराल आते हैं मगर वे सक्रिय होकर

---

* *सिकाडाः सिकाडा, हेमिप्टेरा (hemiptera) वर्ग के कीट हैं। इनकी दो आँखें ललाट के दोनों किनारों पर स्थित होती हैं। पंख पूर्ण विकसित और ज़्यादातर प्रजातियों में पारदर्शी भी होते हैं जिसके कारण पंखों पर फैली शिराएँ स्पष्ट रूप से देखी जा सकती हैं। सिकाडा समशीतोष्ण और ऊष्ण कटिबन्धीय इलाकों में पाए जाते हैं। विविध कीटों के बीच ये अपने बड़े आकार और विशिष्ट ध्वनि के चलते आसानी से पहचाने जाते हैं। सिकाडा के बारे में अधिक जानकारी के लिए पढ़िए लेख 'सिकाडा का मधुर संगीत' संदर्भ अंक - 22-23 में।*

न्यूज़ीलैण्ड की एक गुफा का 'ग्लोवर्म प्लेनेटेरियम'

वृद्धि करते हैं और कई मोल्ट्स से गुज़रते हैं।

अर्थात, हमें जीवन चक्र के वैकल्पिक व व्यापक नज़रिए के उदाहरण उन प्रजातियों में मिलते हैं जिनमें लगता है कि इमेजिनल अवस्था की कीमत पर लार्वा अवस्था की साइज़, जीवन अवधि की लम्बाई और जटिलता पर ज़ोर दिया गया है। इस बात को बटलर की इन मशहूर पंक्तियों में सन्दर्भ के मुताबिक थोड़ा फेरबदल करके व्यक्त किया जा सकता है कि मुर्गी सचमुच एक साधन लगती है जिसके ज़रिए कोई अण्डा दूसरा अण्डा बनाता है। मुझे हाल ही में न्यूज़ीलैण्ड की यात्रा के दौरान एक उम्दा उदाहरण मिला - यह और भी नाटकीय इसलिए है कि इसमें मानव दृष्टि में इमेगो को पूरी तरह अनदेखा करके लार्वा पर ध्यान केन्द्रित किया गया है।

एक बार आप रोटोरुआ के आसपास के धुएँ और भाप, उबाल और झोंकों, गीज़र्स की सल्फ्यूरस गन्ध, ज्वालामुखी के मुहानों और मिट्टी के कटोरों को पार कर जाएँ, तो नॉर्थ आइलैण्ड के दूसरे नम्बर के सबसे बढ़िया पर्यटन स्थल पर पहुँच जाते हैं - वाइतोमो केव का ग्लोवर्म ग्रोटो (गुफा)। यहाँ पूर्ण निस्तब्धता में आप नाव में बैठकर एक अद्‌भुत भूमिगत प्लेनेटेरियम (तारामण्डल) में पहुँचते हैं। यह एक एम्फीथिएटर है जो हज़ारों हरे बिन्दुओं से जगमगाता है। प्रत्येक हरा बिन्दु एक मक्खी के लार्वा (कीट नहीं) का चमकता पिछला सिरा है (मैं इस दृश्य से चुँधिया गया था क्योंकि यह आकाश से एकदम भिन्न था। आकाश में तारे तो पृथ्वी के सापेक्ष बेतरतीबी से बिखरे होते हैं। इसलिए हम उन्हें नक्षत्रों के रूप में जमा देखते हैं। यह थोड़ा विरोधाभासी लगेगा मगर मेरा यह कथन बेतरतीब वितरण के एक सही मगर ना समझे गए पहलू को व्यक्त करता है। बराबर दूरी पर लगे बिन्दु सकारण क्रमबद्ध हैं। बेतरतीब जमावटों में हमेशा कुछ ढेर भी बनेंगे। ठीक उसी तरह जैसे यदि हम सिक्के को कई बार उछालें तो कभी-कभी लगातार चित आएँगे। और हमारे आकाश में तारों की कमी तो नहीं है। दूसरी ओर ग्लोवर्म ज़्यादा एकरूप ढंग से फैले

होते हैं, क्योंकि लार्वा एक-दूसरे से प्रतिस्पर्धा करते हैं और कभी-कभी एक-दूसरे को खा भी जाते हैं - और प्रत्येक लार्वा अपना इलाका बना लेता है। ग्लोवर्म ग्रोटो एक सुव्यवस्थित आकाश है)।

ये लार्वाई ग्लोवर्म मायसेटोफिलिडी (या फफूंद नैट्स) कुल के अत्यन्त परिवर्तित सदस्य हैं। इस प्रजाति के इमेगो में कुछ भी उल्लेखनीय नहीं है मगर इनके लार्वा पृथ्वी के विचित्रतम जीवों में से हैं। इस प्रजाति का नाम लार्वा के (इमेगो के नहीं) दो गुणधर्मों के आधार पर रखा गया है - *एरेक्नोकैम्पा ल्यूमिनोसा*। इस नाम में रोशनी को भी स्थान मिला है और उस घर को भी जो लार्वा को आश्रय भी देता है और शिकार पकड़ने में मददगार भी है (एरेक्ने मतलब बुनकर जो मकड़ियों के कुल एरेक्निड का नाम भी है)। *एरेक्नोकैम्पा ल्यूमिनोसा* के इमेगो बहुत छोटे-छोटे, अल्पजीवी प्रजनन-मशीन होते हैं। अपेक्षाकृत कहीं अधिक बड़े व दीर्घजीवी लार्वा में तीन जटिल व समन्वित अनुकूलन हुए हैं - मांसाहार, रोशनी और जाल बनाना। ये अनुकूलन इन्हें इनके पूर्वज फफूंद नैट्स के लार्वा से अलग करते हैं। फफूंद नैट्स कुकुरमुत्तों में छेद करते हैं और उन्हें अन्दर तक कुतर डालते हैं।

एरेक्नोकैम्पा ल्यूमिनोसा का पूरा जीवन चक्र (अण्डे से अण्डे तक) करीब 11 महीनों का होता है। इसमें से 8 से 9 महीने यह लार्वाई ग्लोवर्म के रूप में

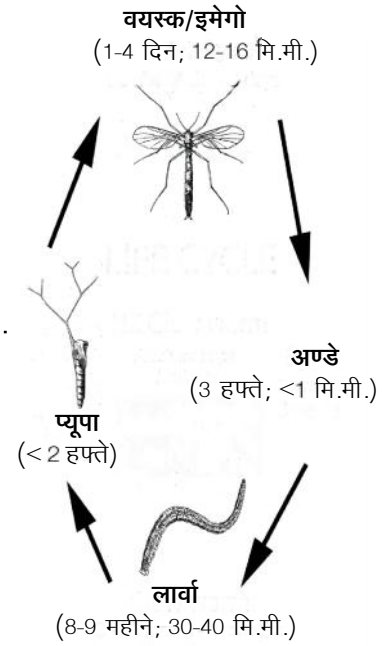

ए. ल्यूमिनोसा का जीवन चक्र। कोष्ठक में हर चरण की अवधि और लम्बाई दी गई है।

बिताता है। लार्वा 4 बार मोल्ट करते हैं और 3-5 मि.मी. के नवजात से शुरू करके 30-40 मि.मी. की लम्बाई हासिल कर लेते हैं (इसके विपरीत, इमेगो की लम्बाई 12-16 मि.मी. होती है, नर मादा से छोटे होते हैं, और 1-4 दिन तक जीते हैं, नर अक्सर मादा से ज़्यादा जीते हैं)।

इस लार्वा के अस्तित्व का एक प्रमुख गुण मांसाहार है जबकि इसके पूर्वज फफूंद नैट्स में लार्वा शाकाहारी

होता है। मांसाहार ही इसकी एकदम भिन्न जीवन शैली की प्रमुख थीम है। उक्त तीन प्रमुख गुणधर्मों पर विचार करें।

लार्वा से रोशनी

ए. ल्यूमिनोसा का प्रकाश पैदा करने वाला अंग लार्वा के पिछले सिरे पर होता है। यह लार्वा की चार उत्सर्जन नलिकाओं के बड़े हो जाने से बनता है। ये नलिकाएँ एक अपशिष्ट (उत्सर्जी) पदार्थ छोड़ती हैं जो ल्यूसिफरेज़ नामक एंज़ाइम की उपस्थिति में चमकता है। इस एंज़ाइम का निर्माण लार्वा स्वयं करता है। इस अभिक्रिया के लिए भरपूर ऑक्सीजन की ज़रूरत होती है। उक्त चार उत्सर्जन नलिकाएँ श्वसन नलिकाओं के बीच धँसी होती हैं। ये श्वसन नलिकाएँ भरपूर ऑक्सीजन सप्लाई करने के अलावा इस अभिक्रिया में उत्पन्न रोशनी को परावर्तित कर नीचे की ओर मोड़ती भी हैं। यह जटिल व विशेष रूप से विकसित तंत्र छोटे-छोटे कीटों (ज़्यादातर मिजस) को घोंसले की ओर आकर्षित करने का काम करता है। प्यूपा और इमेगो में रोशनी पैदा करने की क्षमता बरकरार रहती है। मादा प्यूपा और मादा वयस्क की रोशनी नर को आकर्षित करती है, मगर नर वयस्क की रोशनी की भूमिका के बारे में कोई जानकारी नहीं है।

घोंसला और भक्षण सूत्र

ग्लोवर्म लार्वा अपने मुँह में उपस्थित ग्रन्थियों से रेशम और लार

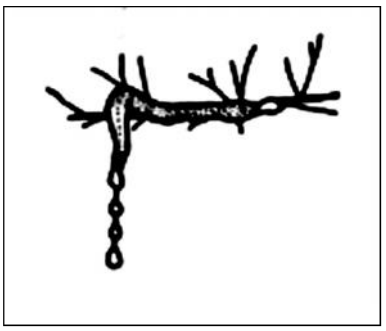

ए. ल्यूमिनोसा लार्वा का भक्षण धागा

छोड़ता है जिससे वह जैविक वास्तु का बेजोड़ निर्माण करता है। शिशु लार्वा पहले तथाकथित घोंसला बनाता है (दरअसल एक खोखली नली या पट्टी) जो उसकी अपनी लम्बाई से करीब 2-3 गुना बड़ा होता है। महीन रेशमी धागों का एक ताना-बाना इसे गुफा की छत से लटकाने का काम करता है। लार्वा अपने घोंसले से पास-पास सटे हुए भक्षण धागों का एक पर्दा-सा गिरा देता है। इन 'बंसियों' की संख्या प्रति घोंसला सत्तर तक हो सकती है और इनकी लम्बाई 1-1 फुट या उससे भी ज़्यादा यानी लार्वा की अपनी साइज़ से 10 गुना तक हो सकती है। हर धागे पर बराबर-बराबर दूरी पर चिपचिपी बूँदें लगी होती हैं जो आसपास फटकने वाले कीटों को पकड़ने का काम करती हैं। पूरी संरचना काँच के मोतियों की नफीस चिलमन के लघु रूप जैसी दिखती है। चूँकि हवा का हल्का-सा झोंका भी इन धागों को उलझा सकता है, इसलिए

न्यूज़ीलैण्ड में गुफाएँ, पुलियाएँ, गड्ढे और घनी वनस्पतियों के बीच शान्त स्थान *ए. ल्यूमिनोसा* के सीमित प्राकृतवास हैं।

मांसाहार

लार्वा अपने पिछले प्रकाशित सिरे का उपयोग एक प्रकाश स्तम्भ के रूप में करके शिकार को अपने भक्षण सूत्रों की ओर आकर्षित करता है। पिछवाड़े स्थित दो उभारों (पैपिला) में संवेदी अंग होते हैं जो फँसे हुए शिकार के कम्पनों को भाँपते हैं। तब लार्वा सम्बन्धित धागे पर थोड़ा नीचे उतरता है, जबकि अपने पिछवाड़े का आधे से दो-तिहाई हिस्सा घोंसले में ही रहने देता है। फिर वह उस धागे और शिकार, दोनों को निगलना शुरू करता है, करीब 2 मि.मी. प्रति सेकण्ड की रफ्तार से।

लार्वा की शरीर रचना और व्यवहार की इस जटिलता के सामने शेष जीवन चक्र तो फीका पड़ जाता है। प्यूपा अवस्था दो सप्ताह से कुछ कम ही होती है और इस दौरान साइज़ में काफी कमी आती है (मादा में 15-18 मि.मी. और नर में 12-14 मि.मी.)। इमेगो की साइज़ में कमी और उसके संक्षिप्त अस्तित्व की बात मैं पहले ही बता चुका हूँ। इमेगो के व्यवहार में भी विविधता या जटिलता की दृष्टि से खास कुछ नहीं है।

वयस्क मक्खियों में मुँह होता ही नहीं है और वे भोजन ही नहीं करतीं। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं है कि उनका संक्षिप्त अस्तित्व मात्र सम्भोग और अण्डा देने की मशीनों के रूप में होता है। तीन तक नर वयस्क किसी मादा प्यूपा के आसपास जमा हो जाते हैं, उसके निकलने के इन्तज़ार में। जैसे ही मादा मक्खी अपने कोश में से निकलने को होती है, ये नर सही स्थिति में पहुँचने के लिए लड़ते-भिड़ते रहते हैं। जैसे ही मादा मक्खी के उदर का सिरा बाहर निकलता है, नर (यदि उपस्थित हैं, तो) उससे सम्भोग शुरू कर देते हैं। अर्थात् हो सकता है कि अपने प्यूपा कोश से निकलने से पहले मादा का निषेचन हो चुका हो।

इसके बाद मादा एक दिन से भी कम (किसी भी हालत में तीन दिन से अधिक नहीं) जीती है और अपने 100-300 अण्डे देने के लिए उचित स्थान ढूँढ़ने के अलावा खास कुछ नहीं करती। ये अण्डे 40-40, 50-50 के झुण्ड में दिए जाते हैं। नर शायद एक दिन ज़्यादा जीवित रहते हैं (चार दिन तक) और भाग्य ने साथ दिया तो एकाध मादा और मिल जाएगी और वे एक बार अपनी भूमिका दोहरा देंगे।

और *ए. ल्यूमिनोसा* के जीवन चक्र में लार्वा के वर्चस्व को रेखांकित करती एक डरावनी विडम्बना यह है कि यह भुक्खड़ लार्वा हर उस चीज़ को खा जाता है जो इसके भक्षण धागों को छुए। कई बार छोटे-छोटे इमेगो इन धागों में फँस जाते हैं और अपने ही

बच्चों के भोजन बन जाते हैं।*

कृपया इस लेख से यह निष्कर्ष न निकालें कि लार्वा (चाहे *ए. ल्यूमिनोसा* के या किसी अन्य कीट के) इमेगो से ज़्यादा महत्वपूर्ण हैं। मैंने यह दर्शाने की कोशिश की है कि मानव विकास की संदिग्ध (यद्यपि सामाजिक रूप से स्वीकार्य) व्याख्या के साथ साम्य दिखाकर लार्वा को यह कहकर खारिज नहीं किया जाना चाहिए कि वह तैयारी की अवस्था है, अविकसित है या अपूर्ण है। यदि किसी 'उच्चतर यथार्थ' का अस्तित्व है तो वह यथार्थ स्वयं जीवन चक्र ही है। लार्वा और इमेगो एक सम्पूर्णता की दो अवस्थाएँ हैं और एक के बगैर दूसरी सम्भव नहीं है। अण्डों को मुर्गी की उतनी ही ज़रूरत है, जितनी मुर्गी को अण्डे की।

मैंने यह दिखाने की कोशिश ज़रूर की है कि बच्चा-वयस्क का रूपक लार्वा-इमेगो को समझने के लिए ठीक नहीं है। मैंने एक ऐसे मामले की चर्चा से शुरुआत की जहाँ लार्वा हमारा पूरा ध्यान खींचता है - सौंदर्य की दृष्टि से, बड़ी साइज़ की दृष्टि से, जीवन की लम्बाई की दृष्टि से, शरीर रचना व व्यवहार की जटिलता की दृष्टि से; और जैव-विकास की दृष्टि से कि वह अपने पूर्वज की अपेक्षाकृत सरल जीवन शैली से एकदम अलग हटा, जबकि इमेगो ने अपने विरासती रूप और व्यवहार को बहुत कम बदला। मगर *ए. ल्यूमिनोसा* के लार्वा पर हमारा ज़ोर उचित होते हुए भी किसी श्रेष्ठता का द्योतक नहीं है।

हमें एक और रूपक की ज़रूरत है ताकि उस प्रचलित व्याख्या को तोड़ सकें जिसमें लार्वा को महत्वहीन

---

* *जैव-विकास के इतिहास में रुचि रखने वाले पाठकों के लिए एक क्षणिका - लार्वा के अनुकूलन के इतने समन्वित संकुल ने रिचर्ड गोल्डश्मिट को इतना चक्कर में डाला कि उन्होंने एक पूरा आलेख यह कहते हुए लिखा कि रोशनी, मांसाहार और घोंसला बनाने की क्रिया क्रमिक टुकड़ों में विकसित नहीं हुई होगी क्योंकि इनमें से किसी एक का दूसरे की अनुपस्थिति में कोई अर्थ नहीं है - और इसलिए यह पूरा का पूरा संकुल एक साथ किसी बड़े उत्परिवर्तन के आकस्मिक परिणाम के रूप में उभरा होगा। उन्होंने ऐसे उत्परिवर्तन को एक 'आशान्वित दैत्य' कहा था।*

इस सुझाव (जो अँग्रेज़ी में 1948 में 'रिव्यू साइन्टिफिक' में प्रकाशित हुआ था) पर रूढ़िगत डार्विनवादियों की तीखी प्रतिक्रिया हुई थी। हालाँकि मेरे मन में गोल्डश्मिट की मूर्तिभंजक प्रवृत्ति के प्रति काफी सहानुभूति है, मगर मुझे लगता है कि इस मामले में वे गलत थे। जैसा कि जे.एफ. जैक्सन (1974) ने स्पष्ट किया था, गोल्डश्मिट ने ए. ल्यूमिनोसा को मायसेटोफिलिडी में वर्गीकृत करके एक गलती की थी। उन्होंने इसे उपकुल बॉलिटोफिलिनी में रखा था। इस समूह के सारे लार्वा मुलायम कुकुरमुत्तों में बिल बनाते हैं और एक भी ऐसा नहीं है जिसमें उक्त तीन परस्पर सम्बन्धित लक्षणों में से एक भी लक्षण हो जो ए. ल्यूमिनोसा की रचना और व्यवहार को अनूठा बनाते हैं। लिहाज़ा गोल्डश्मिट ने तर्क इस आधार पर विकसित किया कि या तो सब कुछ (तीनों लक्षण) है या कुछ नहीं है।

मगर ए. ल्यूमिनोसा शायद एक अन्य उपकुल का सदस्य है - कीरोप्लेटिने। यह बात गोल्डश्मिट को पता नहीं थी कि इस समूह की कई प्रजातियों में सम्भावित संक्रमण यानी

उपछाया में धकेल दिया जाता है (आप में से कितने लोग मैगट यानी इल्लियों को 'मक्खी' अवधारणा में शामिल करते हैं? और आपमें से कितने लोगों ने यह सोचा है कि मे-फ्लाई का लार्वा अपेक्षाकृत ज़्यादा समय जीता है?)। प्रकृति के तथ्य तो जो हैं, वही रहेंगे मगर हम उन्हें अपने मानसिक चश्मों से देख सकते हैं। हमारे दिमाग हमेशा सख्त तर्क के ज़रिए नहीं बल्कि मूलतः रूपकों और उपमाओं के ज़रिए काम करते हैं। जब हम किसी अवधारणात्मक जाल में फँस जाते हैं तो बाहर निकलने का सर्वोत्तम तरीका प्रायः यह होता है कि रूपक को बदल दिया जाए। ऐसा इसलिए नहीं कि नए दिशानिर्देश प्रकृति के प्रति ज़्यादा सच्चे होंगे (क्योंकि न तो पुराना रूपक 'प्रकृति' में था और न ही नया वाला है), बल्कि इसलिए कि हमें ज़्यादा फलदायी परिप्रेक्ष्य की ओर बढ़ने की ज़रूरत है और अवधारणात्मक परिवर्तन के सबसे बढ़िया वाहक अक्सर रूपक ही होते हैं।

यदि हम लार्वा को अपने तईं कामकाजी चीज़ों के रूप में समझना चाहते हैं, तो हमें बच्चा-वयस्क के वैकासिक रूपक को हटाकर एक आर्थिक उपमा का सहारा लेना चाहिए जिसमें लार्वा और इमेगो के बीच कार्यों के बुनियादी अन्तर को पहचाना जाए - लार्वा भक्षण के लिए बनी मशीन और इमेगो प्रजनन के लिए बना साधन। सौभाग्यवश, ऐसा एक स्वाभाविक-सा रूपक एडम स्मिथ की *वेल्थ ऑफ नेशन्स* के पहले पृष्ठ पर ही मौजूद है। हमें अपना बेहतर रूपक इस पुस्तक के अध्याय-1 के शीर्षक, श्रम का

ट्रांज़िशन के कई चरण दिखाई देते हैं। लेप्टोमॉर्फस फफूंद-बीजाण्ड पकड़कर खाता है जो कुकुरमुत्तों के नीचे टँगे चादर जैसे एक घोंसले में फँस जाते हैं। मैक्रोसेरा और कीरोप्लेटस की कुछ प्रजातियों में भी फफूंद-बीजाण्डों को पकड़ने के लिए घोंसले बनाए जाते हैं मगर ये छोटे-मोटे आर्थ्रोपोड जन्तुओं को भी पकड़ती हैं। ओर्फेलिया, एपेनॉन की प्रजातियाँ और प्लेटीयूरा भी इसी तरह के जालनुमा घोंसले बनाते हैं मगर ये मशरूम से जुड़े नहीं होते। और तो और, ये पूरी तरह फँसे हुए कीटों के भोजन पर निर्भर हैं। और अन्तिम है ओर्फेलिया एयरोपिस्केटर (अक्षरशः मछली का शिकारी), यह भी घोंसला बनाता है और धागे लटकाता है मगर इसमें रोशनी नहीं होती।

वैसे ये विविध मध्यवर्ती जीव ए. ल्यूमिनोसा के पूर्वज नहीं हैं। इनमें से हरेक एक भलीभाँति अनुकूलित प्रजाति का प्रतिनिधित्व करता है। ये न्यूज़ीलैण्ड के तीन-लक्षणी ग्लोवर्म के विकास की मध्यवर्ती अवस्थाएँ नहीं हैं। मगर यह विविध समूह दर्शाता है कि रचनात्मक दृष्टि से इस शृंखला का हरेक मध्यवर्ती एक सफल जीव की तरह रह सकता है। यह तर्क शृंखला लगभग वैसी ही है जैसी डारविन ने कशेरुकी आँख की अत्यन्त जटिल संरचना के विकास की गुत्थी सुलझाते समय उपयोग की थी। डारविन ने संरचनागत मध्यवर्तियों की एक शृंखला पहचानी - प्रकाश संवेदी बिन्दुओं से लेकर कैमरानुमा लेंस तक। ये सब वास्तविक पूर्वज नहीं थे (वे तो जीवाश्मों के कठोर हिस्सों के बीच गुम हो गए हैं क्योंकि आँख संरक्षित नहीं रहती) मगर एक सम्भावित शृंखला थी जो इस सहजबुद्धि को चुनौती देती थी कि मध्यवर्ती रचनाएँ सम्भव ही नहीं हैं।

विभाजन, और स्मिथ के पहले वाक्य में मिल जाता हैः

'ऐसा लगता है कि श्रम की उत्पादक शक्तियों में सबसे बड़े सुधार और जिस हुनर, कुशलता व विवेक के साथ इसे दिशा मिलती है या इसका उपयोग किया जाता है, वह श्रम के विभाजन का प्रभाव है।'

पूर्ण कायान्तरण वाले कीटों ने भोजन प्राप्त करने और प्रजनन के अलग-अलग, कभी-कभी परस्पर विरोधी कार्यों को जीवन चक्र की क्रमिक अवस्थाओं को आवंटित करके एक ऐसा श्रम विभाजन हासिल कर लिया है, जो हरेक गतिविधि में सूक्ष्म अनुकूलन को सम्भव बनाता है।

यदि आप कॉलेज में अर्थ शास्त्र के अपने पहले कोर्स की यादों को कुरेदें, तो आपको याद आएगा कि एडम स्मिथ ने श्रम के विभाजन को स्पष्ट करने के लिए जानबूझकर एक सरल उदाहरण का उपयोग किया था - पिन का निर्माण। वे तार को खींचने, काटने, सिर बनाने, सिर को पिन की डण्डी से जोड़ने, और तैयार माल को कागज़ में लगाकर बिक्री के लिए तैयार करने जैसे अट्ठारह अलग-अलग कदमों की शिनाख्त करते हैं। वे दलील देते हैं कि यदि कोई व्यक्ति ये सारी क्रियाएँ स्वयं करे, तो दिन भर में 20 पिनें भी नहीं बना पाएगा। मगर श्रम के सन्तुलित विभाजन के ज़रिए काम में हाथ बँटाते हुए दस व्यक्ति प्रतिदिन करीब 48,000 पिनें बना सकते हैं। ऐसा मानव जीवन शायद हमें ऊब की पराकाष्ठा लगेगा जिसमें कोई व्यक्ति पिन को नुकीला बना रहा है, कोई उनका सिर बना रहा है, या उन्हें कागज़ में घुसा रहा है। मगर *ए. ल्यूमिनोसा* का लार्वा पूर्णतः पोषण-पाचन को समर्पित अपने जीवन में किसी मनोवैज्ञानिक तनाव का सामना नहीं करता।

शौकिया व पेशेवर कीट विज्ञानियों ने निसन्देह एडम स्मिथ द्वारा श्रम के विभाजन को समझाने के लिए चुने गए पिन के उदाहरण की गैर-इरादतन विडम्बना को पकड़ लिया होगा। पिनें किसी भी कीट संग्रहकर्ता के प्रमुख औज़ार हैं। इनका उपयोग काइटिन-निर्मित सूखे इमेगो को संग्रह-बोर्ड या डिब्बों पर फिट करने के लिए किया जाता है, मगर मोटे, रसीले लार्वा के लिए नहीं।

यानी हो सकता है कि *ए. ल्यूमिनोसा* के इमेगो के जीवन का अन्त किसी लार्वा के जाल में फँसकर हो, मगर यदि वही इमेगो किसी मानव संग्रहकर्ता के हाथ लग गया तो उसे उसी वस्तु से पकड़कर रखा जाएगा जो उसके अवधारणात्मक वर्चस्व से उपयुक्त साझेदारी में पतन का प्रतीक है।

पुनश्च - बेतरतीब और क्रमबद्ध सारणी

किसी भी शोधकर्ता के लिए इससे बड़ा सुख कोई नहीं होता कि उसके विचार को आगे बढ़ाया जाए - यानी किसी निजी विचार को अन्य सहकर्मी इस तरह विकसित करें जो स्वयं उसकी पकड़ से बाहर हैं। मैंने इस लेख में एक आम विरोधाभास की ओर चलते-चलते इशारा किया है - बेतरतीब जमावटों में आभासी पैटर्न बनाम सचमुच नियम-आधारित जमावट में किसी पैटर्न का न दिखना। यह विरोधाभास इसलिए पैदा होता है क्योंकि बेतरतीब तंत्र निहायत लोंदेदार होते हैं और हम इन लोंदों को किसी निर्धारित व्यवस्था के रूप में देखते हैं। मैंने आकाश का उदाहरण दिया था - इसमें हम नक्षत्र देखते हैं क्योंकि तारे पृथ्वी की स्थिति के सापेक्ष बेतरतीब ढंग से बिखरे हुए हैं। मैंने आकाश में पैटर्न के हमारे एहसास की तुलना वाइतोमो गुफा के कृत्रिम 'आकाश' से की जहाँ 'तारे' मक्खी के लार्वाओं के स्व-प्रकाशित पिछले सिरे हैं। चूँकि ये मांसाहारी लार्वा स्वयं को एक क्रमबद्ध ताने-बाने में व्यवस्थित कर लेते हैं (क्योंकि वे अपने आसपास की किसी भी चीज़ का भक्षण करते हैं और इसलिए अपने शरीर के आसपास 'मुमानियत के क्षेत्र' स्थापित कर लेते हैं), इसलिए वाइतोमो का 'आकाश' हमें विचित्र लगता है, क्योंकि यहाँ लोंदों का अभाव है।

मेरे प्रिय सहकर्मी एड पर्सेल (भौतिकी में नोबेल विजेता और यदा-कदा बेसबॉल सांख्यिकी में सहयोगी) ने यह 'चलते-चलते' टिप्पणी पढ़ी और इस प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए जल्दी-से एक कंप्यूटर प्रोग्राम लिख डाला। उन्होंने चौकोन कोठरियों का एक ताना-बाना ('क्ष' अक्ष पर 144 इकाइयाँ और 'य' अक्ष पर 96 इकाइयाँ थीं, कुल 13,824 स्थितियाँ थीं) बनाकर उसमें बेतरतीबी या क्रमबद्धता के निम्नलिखित नियमों (आकाश बनाम वायतोमो के लार्वा को ध्यान में रखते हुए) के अनुसार या तो 'तारे' या 'लार्वा' रखेः तारा विकल्प में, चौखानों में बेतरतीबी से तारे रखे गए थे (एक बेतरतीब संख्या जनक 1 से 13,824 के बीच कोई संख्या बताता और उस संख्या वाले चौखाने में तारा रख दिया जाता। लार्वा विकल्प में वही बेतरतीब संख्या जनक संख्याएँ बताता था मगर उस चौखाने में लार्वा तभी रखा जाता था जब वह चौखाना और उसके आसपास के सारे चौखाने खाली हों (ठीक उसी तरह जैसे लार्वा मुमानियत का क्षेत्र बनाता है)। अर्थात् लार्वा युक्त चौखाने क्रमबद्धता के सिद्धान्त पर भरे गए हैं जबकि तारों वाले

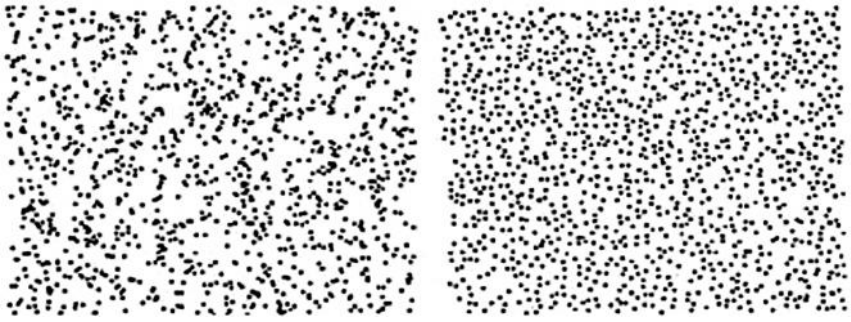

एड पर्सेल के कम्प्यूटर प्रोग्राम का आउटपुट - बाएँ तरफ तारे, दाएँ तरफ लार्वा। एक विचित्र मनोवैज्ञानिक परिणाम पर ध्यान दें - ज़्यादातर लोगों को बाएँ तरफ के चित्र के तारों और गुच्छों में कुछ प्रणाली (ऑर्डर) नज़र आएगी। और दाएँ तरफ के चित्र में कोई स्पष्ट पैटर्न न दिखने की वजह से, उसे बेतरतीब मानेंगे। दरअसल, इसका विपरीत सही है, और हमारी सामान्य अवधारणाएँ गलत।

चौखाने मात्र बेतरतीब संख्याओं के आधार पर।

अब ज़रा 1500 तारों और लार्वाओं से बने पैटर्न पर गौर कीजिए (यह अभी भी लार्वा के लिए उपलब्ध चौखानों की संख्या से आधा है, क्योंकि हर चार में एक चौखाना भरा जा सकता है और इस आधार पर कुल 3456 लार्वा-कोठरियाँ उपलब्ध हैं)। साधारण एहसास के आधार पर हम कसम खा सकते हैं कि 'तारों' वाले प्रोग्राम ने तो सकारण पैटर्न पैदा किया है जबकि 'लार्वा' प्रोग्राम में किसी पैटर्न का अभाव दर्शाता है कि लार्वाओं को चौखानों में बेतरतीब ढंग से भरा गया है। ज़ाहिर है, जो बात सही है वह इसके एकदम विपरीत है। मुझे एक पत्र में एड ने लिखा था:

जो चीज़ मुझे 'तारों' के बेतरतीब मैदान में प्रभावित करती है, वह यह है कि इसमें किसी-न-किसी रूप में 'आकृतियों' का दर्शन होता है। यह मानना मुश्किल है कि कोई भी आभासी आकृति - लड़ी, समूह, नक्षत्र, मार्ग, वक्र शृंखला, रिक्तिका - दरअसल एक निरर्थक संयोग है और इसका एकमात्र कारण मेरी आँखों और मस्तिष्क में पैटर्न की लालसा है। मगर इस मामले में यह बात पूरी तरह सच है।

मुझे पता नहीं कि क्यों हमारे दिमाग (डिज़ाइन की वजह से या संस्कृति की वजह से) ने हमें सम्भाविता की गणनाओं में इतना कमज़ोर बनाया

है - मगर यह लगभग सर्वव्यापी असमर्थता बौद्धिक व रोज़मर्रा के जीवन की एक प्रमुख, प्रायः खतरनाक, खामी साबित होती है। एड पर्सेल ने सम्भाविता के सन्दर्भ में प्रशिक्षित लोगों में गलतफहमियों को रेखांकित करते हुए आगे लिखा थाः

यदि आप भौतिकी के किसी छात्र को एक कलम देकर कहें कि 1500 बिन्दुओं का एक बेतरतीब चित्र बनाएँ, तो मुझे यकीन है कि वह चित्र 'तारों' की बजाय 'लार्वा' वाले विकल्प जैसा दिखेगा।

स्टीफन जे गूल्डः (1941-2002) पेशे से जीवाश्म विज्ञानी, इनके योगदान जैव-विकास सिद्धान्त, और वैज्ञानिक दर्शन-शास्त्र व इतिहास में भी रहे हैं। हार्वर्ड यूनिवर्सिटी में प्रोफेसर, म्यूज़ियम् ऑफ कम्पेरिटिव ज़ुओलॉजी के अध्यक्ष के साथ-साथ एक लोकप्रिय लेखक भी थे। यह लेख उनकी किताब 'बुली फॉर ब्रॉंटोसॉरस' से लिया गया है।

अँग्रेज़ी से अनुवादः सुशील जोशीः एकलव्य द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

चित्रः विविध वेबसाइट से साभार।